श्री विद्यामान्यतीर्थ स्वामीजी के किसी सेवक ने सर्व-सम्मति के लिए सबके सामने एक समय-बन्ध (शर्तनामा) सुनाया । मेरी स्मृति के अनुसार वह इस प्रकार है : 'विप्रतिपत्ति (दो विरुद्ध कोटियों की उपस्थिति) का विषय है—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' यह वचन । उसका साधक होगा 'वादी' और बाधक होगा 'प्रतिवादी' । इसके लिए दश उपनिषदें, गीता, ब्रह्मसूत्र और तदुपष्टम्भक, रूप में प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाण माने जायँगे । इनके प्रति जिन्हें प्रामाण्य न हो, वे उसे शास्त्रार्थ के पूर्व ही सूचित कर दें । इनके विरुद्ध बोलने य व्यक्तिगत निन्दा करने पर वक्ता की पराजय मानी जायगी । अपने-अपने आचार्यों द्वारा कथित उपक्रम, उपसंहार आदि पृथक्-पृथक्, सोदाहरण उपस्थित किये जायँ । यदि शासन स भी जन-कोलाहल शान्त न हो पाये, तो उसी समय वहाँसे उठकर किसी एकान्त में विद्वत्सभा आयोजित कर विचार चलाया जाय। पहले दिन मध्यस्थ द्वारा अनिर्णीत विचारणीय विषय पर ही दूसरे दिन शास्त्रार्थ चले । वादी, प्रतिवादी दोनों अपने द्वारा प्रतिपादित सन्दर्भ परस्पर को बताकर मध्यस्थ की सम्मति से उनके हस्ताक्षर के साथ अपने भी हस्ताक्षर कर प्रकाशित कर सकते हैं ।'

इसके बाद श्रीगुरुचरण द्वारा यह कहने पर कि "विज्ञप्तिपत्र में प्रकाशित इस अंश पर कि, अद्वैतियों को ही लक्ष्यकर भगवान् ने गीता में 'ईश्वरोऽहमहं भोगी'

आदि कहा है,' ही पहले विचार चलाया जाय", श्री विद्यामान्यतीर्थ स्वामीजी ने कहा कि बाद में इस पर भी विचार होगा । उभय मत से महामण्डलेश्वर श्री भागवतानन्द जी महाराज 'मध्यस्थ' चुने गये । समय-बन्ध (शर्तनामे) में वादी रूप में गुरुचरण श्रीकरपात्रीजी महाराज के, प्रतिवादी रूप में श्रीविद्यामान्यतीर्थ स्वामीजी के तथा मध्यस्थ रूप में श्री भागवतानन्द जी महाराज के हस्ताक्षर हुए । उसके बाद यह शास्त्रार्थ-विचार प्रारम्भ हुआ ।

प्रथम दिवस की विचार-सभा

वादी : श्री विद्यामान्यतीर्थ स्वामीजी द्वारा प्रकाशित पत्र में लिखा है कि "असत्यमप्रतिष्ठं ते" (१६।८) और 'ईश्वरोऽहमहम्' (१६।१४) गीता के ये वचन अद्वैतियों को ही लक्ष्य कर कहे गये हैं । इस प्रकार गीतागायक श्रीकृष्ण 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' यह मत आसुर-मत ही मानते हैं । " किन्तु यह ठीक नहीं, श्री रामानुज, श्री मध्व आदि आचार्यों ने उपर्युक्त वचनों का कहीं भी ऐसा अर्थ नहीं किया है । इसके अतिरिक्त भगवान् के ही अन्य वचनों से विशेष भी विरोध स्पष्ट है । 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि' इस गीतावचन में क्षेत्रज्ञ और परमात्मा का ऐक्य बताया गया है । साथ ही 'भूतप्रकृतिमोक्षञ्च' से भूतप्रकृति के बाध का भी वर्णन है । अतः कहना होगा कि भगवान् ने स्वयं ही ब्रह्म का अद्वितीयत्व और जगत् का मिथ्यात्व बताया है । भाष्यकार भी लिखते हैं : 'यथा वयमनृतप्रायास्तथेदं सर्वं'

जगत्' (जैसे हम लोग अनृतप्राय हैं, वैसे ही सारा जगत् भी असत्य है) । अन्य व्याख्याताओं ने 'असत्यम्' से वेदान्तिसम्मत मिथ्यात्व नहीं माना है । ध्यान देने की बात है कि वेदान्तियों के 'असत्य', 'मिथ्या' आदि शब्द वस्तु का अपलाप नहीं करते, अपितु उसकी अनिर्वचनीयता ही बताते हैं, जैसा कि कहा गया है : 'मिथ्याशब्दो नापह्नववचनः, किन्त्वनिर्वचनीयतावचनः ।'

'प्रतिवादी : भूतप्रकृतिमोक्षञ्च' यहाँ भूतों, जीवों की प्रकृति का 'मोक्ष' बताया है, बाध नहीं । 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' यहाँ 'भूत'-पद से जीव ही गृहीत है । 'कारागारात् मोक्षः' इत्यादि स्थानों में ही 'मोक्ष' शब्द प्रयुक्त हुआ करता है, 'बाध' अर्थ में मोक्ष शब्द का प्रयोग कहीं नहीं देखा जाता । 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य' इस न्याय से एकमात्र वेद द्वारा समधिगम्य धर्माधर्मारूप संसार का बाध भी तो नहीं हो सकता । कारण श्रुति-बोधित अर्थ का श्रुति से ही बाध सम्भव नहीं ।

वादी : कारागार से मुक्ति चेतन की ही देखी जाती है । भूत और प्रकृति जड़ होने से उनका मोक्ष संभव कहाँ ? अतः वहाँ मोक्ष का अर्थ 'अभावता-प्राप्ति' ही करना होगा । इसीसे सांख्यमत से वैलक्षण्य सिद्ध हो जाता है । सांख्यानुयायी क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को परस्पर भिन्न मानते हैं, पर भूतप्रकृति का बाध नहीं, यह भी वैलक्षण्य है ।

इसके अतिरिक्त यह कहना भी ठीक नहीं कि 'श्रुतिप्राप्त का श्रुति से बाध नहीं हो सकता ।' श्रुतिबोधित प्रपञ्चसृष्टि

का बाध माना ही गया है । जैसे 'फलवत्सन्निधावफलं तदङ्गम्' इस न्याय से, अफल प्रयाजादि दर्शपूर्णमास के अंग माने जाते हैं, वैसे ही अफल सृष्टिवर्णन 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इसके अनुसार सफल ब्रह्मज्ञान का अङ्ग है । अतः उसका बाध होने पर भी कोई क्षति नहीं । वेदवाक्य से वेदवाक्य का बाध होने पर भी कोइ क्षति नहीं । 'वेदवाक्य से वेदवाक्य का बाध नहीं होता' इसका यही तात्पर्य है कि वेदवाक्य से तत्परक वेदवाक्य का बाध नहीं होता । वेदों के महातात्पर्य का विषय ब्रह्म ही है, धर्माधर्मादि जगत् नहीं । वे तो अवान्तर तात्पर्य के विषय हैं । अतः अतत्पर सृष्ट्यादिवाक्यों का 'नेह नानास्ति किञ्चन' इस ब्रह्मवाक्य से बाध होता ही है । 'जर्तिल यवाग्वा जुहोति' 'गवेधुक् यवाग्वा जुहोति' 'अनाहुतिर्वा एता जतिलाश्च गवेधुकाश्च' 'अजाक्षीरेण जुहोति' इत्यादि होमसाधनता तथा उसकी निन्दा का 'अजाक्षीरेण जुहोति' इस विधिवाक्य के साथ एकवाक्यता होने से तत्पर वाक्य से उसका बाध हो ही सकता है ।

प्रतिवादी : 'भूतप्रकृतिमोक्षञ्च' यहां 'भूत' शब्द से जड़ नहीं, अपितु जीव का ग्रहण है, क्योंकि 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' यहाँ जीव का ही ग्रहण किया गया है । धर्माधर्मादि जगत् भी एकमात्र श्रुतिगम्य होने से तात्पर्यविषय ही है । इसलिए उसका बाध नहीं हो सकता, कारण श्रुतिबोधितत्व उसमें भी समान ही है । धर्माधर्मादि में महा-

तात्पर्य न होने पर भी अवान्तर तात्पर्य है ही। अतः अतत्-परत्व नहीं।

वादी : 'भूतप्रकृतिमोक्षञ्च' यहाँ भूतपद से जड़ भूतों का ही ग्रहण है, जीवों का नहीं। 'महाभूतान्यहङ्कार…' इत्यादि श्लोक में भूतपद से जड़ का ही ग्रहण किया गया है, चेतन तो 'क्षेत्रज्ञ' शब्द से सम्बुद्ध है।

'क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षञ्च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥'

इसीसे मोक्षसाधन बताया गया है। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के अन्तर का ज्ञान और भूतप्रकृति का बाधज्ञान ही मोक्ष का साधन है, भूतमोक्ष का ज्ञान नहीं। आपके मत में भी वह मोक्ष का साधन नहीं है। धर्माधर्मादि वेदप्रोक्त होने पर भी उनमें मुख्य तात्पर्य नहीं है। 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' इत्यादि श्रुति-स्मृत्यादि में एकमात्र भगवान् को ही वेदवेद्य कहा है। अन्यत्र भी यही कहा गया है :

'मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम्।
एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम्।
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिद्ध्य प्रसीदति॥'

इससे यह सिद्ध हुआ कि अपूर्व होने पर भी ब्रह्म की तरह धर्माधर्मादि जगत् वेद का तात्पर्यविषय नहीं। अतः उसकी अपेक्षा जगद्बोधक वाक्य अतत्परक ही हैं। तत्परक ब्रह्मवाक्य से उन अतत्परक वाक्यों का बाध होता है। तथा च यहां भूतप्रकृति का बाध ही अभिप्रेत है।

प्रतिवादी : धर्मादि-बोधक वाक्यों का धर्मादि में महातात्पर्य न होने पर भी अवान्तर तात्पर्य है ही। अतः उस वाक्य की अतत्परता नहीं हो सकती। इसी प्रकार ब्रह्म की तरह मोक्ष भी वेद्य है, क्योंकि वह वेदोक्त है। फलाध्याय में फल-वर्णन किया गया है। फलज्ञान से ब्रह्म की जिज्ञासा, श्रवण, मनन आदि क्रम से ब्रह्मज्ञान होता है। अतः फलज्ञान भी मोक्ष का कारण है। उसके अभाव में मोक्ष में प्रवृत्ति ही अनुपपन्न हो जायगी।

वादी : धर्मादिबोधक वाक्यों का ब्रह्म की तरह धर्मादि में महातात्पर्य न होने से ही उनकी अतत्परता सिद्ध है। किन्हीं अर्थवाद-वाक्यों का स्वार्थ में अवान्तर तात्पर्य होने पर भी विध्येकवाक्यता से उसमें महातात्पर्य न होने के कारण जैसे अतत्परता है, यहां भी ठीक वही बात है। इसी तरह मोक्षज्ञान मोक्षप्रवृत्ति का कारण होने से, वेद्य न होने पर भी मोक्षहेतुत्वेन अवेद्य ही है। परम्परया हेतुत्व तो घट के प्रति कुलालपिता की तरह अन्यथासिद्ध होने से वह हेतु ही नहीं हो सकता।

प्रतिवादीः 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस वेदवचन ने जैसे ब्रह्म को सत्य बताया, वैसे ही 'विश्वं सत्यं मघवाना' इस वेदवचन से विश्व को सत्य बताया गया है। तब विनिगमक न होने से 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' यह कहना साहस ही होगा।

वादी : विश्व को परमार्थतः सत्य मानें, तो ब्रह्म की अनिर्वचनीयता की बोधक 'एकमेवाद्वितीयम्' इस श्रुति के साथ

'ब्रह्मज्ञानेन मोक्षः' का अर्थ है, ब्रह्म के
विरोध होने लगेगा। 'ब्रह्मज्ञानेन मोक्षः' का अर्थ है, ब्रह्म के
याथात्म्यज्ञान से मोक्ष होता है। ब्रह्म का याथात्म्य यह है कि
प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ही ब्रह्म है, जो कि 'एकमेवाद्वितीयम्'
इत्यादि रीति से सजातीय-विजातीय-स्वगत भेदों से शून्य है।
एवञ्च दो सत्यद्वय समान नहीं हो सकते ! यही कारण है
कि 'सत्यस्य सत्यम्' यहां षष्ठ्यन्त सत्य शब्द का अर्थ अन्य
है और प्रथमान्त सत्य का अर्थ अन्य, जैसे कि 'राज्ञां राजा
राजराजा' यहां दोनों राजशब्दों का समान अर्थ नहीं होता।
इस तरह कहना पड़ेगा कि विश्व का सत्यत्व व्यावहारिक है,
जब कि ब्रह्म का सत्यत्व पारमार्थिक है। बाध्यत्व ही
'मिथ्यात्व' है और अत्यन्ताबाध्यत्व 'सत्यत्व' है। विश्व में
अबाध्यत्वरूप सत्यत्व होने पर भी ब्रह्म की तरह अत्यन्ता-
बाध्यत्व न होने से उसका मिथ्यात्व सिद्ध ही है।

प्रतिवादी : इस तरह तो ब्रह्म को ही व्यावहारिक सत्य
कह सकते हैं और विश्व को पारमार्थिक सत्य। फिर व्याव-
हारिक होने से ब्रह्म मिथ्या भी होने लगेगा ?

वादी : जगत् की पारमार्थिक सत्यता किन्हीं भी वादियों
ने नहीं मानी। सभी वादी उसे व्यावहारिक ही मानते हैं।
इसके अतिरिक्त ब्रह्म मिथ्या होने पर उनका बाध होगा।
फलतः वह अब्रह्म होने से उसके अधिष्ठान को ही ब्रह्म मानना
होगा। नियम है कि सभी निषेध साधिष्ठान हुआ करते हैं।
अतः जिसमें ब्रह्म का निषेध होगा, वही ब्रह्म हो जायगा।
कारण निरतिशय बृहत् ही ब्रह्म पदार्थ है। वाचस्पति की

भी मति जहाँ अतिशय--कल्पना के पारम्पर्य से श्रान्त हो
जाय, वही निरतिशय है।

साथ ही यह भी नियम है कि समय-बन्ध में अपने
आचार्य के मत के विरुद्ध न कहा जाय। किन्तु आपका यह
कहना अपने आचार्य के अभिमत के विरुद्ध है। श्रीमन्मध्वा-
चार्य ब्रह्म को मिथ्या या बाध्य नहीं मानते। आपके आचार्य
यह भी नहीं मानते कि जीवों के मोक्षज्ञान से मोक्ष होता
है। 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'
इस श्रुति से ब्रह्मज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा गया है।
श्रुति धर्म और अधर्म का स्वरूप बतलाती है, उसका अत्यन्त
अबाध्यत्व नहीं। उतने से धर्मानुष्ठान और अधर्मपरिहार
द्वारा पुरुषार्थ सिद्ध हो सकता है। श्रुति तो स्वप्नगत अर्थ
का भी वर्णन करती है। किन्तु उतने से स्वप्नार्थ की
अबाध्यता समर्थित नहीं की जा सकती।

ज्ञातव्य है कि जहाँ समान तात्पर्य हो, वहाँ शास्त्रविहित
का अत्यन्त बाध न होने से विकल्प होता है। जैसे :
'अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति, नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति'
यहाँ षोडशी पात्र के ग्रहण-अग्रहण का विकल्प होता है।
किन्तु जहाँ समान तात्पर्य नहीं होता, वहाँ ऐसी बात नहीं।
यही कारण है कि 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चैवामूर्तञ्च'
यहाँ ब्रह्म के दो रूपों का वर्णन और 'अथातो नेति नेति'
इस प्रकार उसका बाध भी श्रुति ही करती है। निषेध के
प्रसंग में निषेध्यसमर्पकत्वेन ही उसका वर्णन किया जाता है।
सृष्टि-प्रकरण में 'अस्य महतो भूतस्य' इत्यादि से वेदों की

उत्पत्ति बतायी गयी है। अन्यत्र 'वेदा अवेदा भवन्ति' यह कहकर उसका बाध भी वर्णित है।

कुछ माध्व तो वेदों का मिथ्यात्व-वर्णन देखकर अद्वैतियों को नास्तिक भी कहते हैं। किन्तु वह ठीक नहीं, वेद ने ही वैसा कहा है। अतएव वेदप्रामाण्याभ्युपगन्तृत्व ही आस्तिकत्व माना जाता है, वेद की स्वरूप-सत्ता स्वीकार करना मात्र आस्तिकता नहीं। अन्यथा चार्वाक भी आस्तिक होने लगेंगे। आखिर वे भी वेद की सत्ता, अस्तित्व मानते ही हैं, पर वे वेद का प्रामाण्य नहीं मानते। सिद्धान्ततः वे नास्तिक ही हैं। इसी तरह 'नेह नानाऽस्ति किञ्चन', 'अतोऽन्यदार्तम्' इत्यादि प्रमाणों से विश्व का बाध दृष्टिगोचर होने से, मिथ्या होने से जगत् का ही बाधा होता है, ब्रह्म का नहीं। परमार्थ सत्य होने से ब्रह्म का बाध नहीं हो सकता।

प्रतिवादी : हमने आचार्य का विरोध नहीं किया। केवल उस प्रकार का आपादन (आपत्ति) मात्र किया है।

वादी : अपने आचार्य के सिद्धान्त के विरुद्ध आपादन भी कैसे कर सकते हैं?

प्रतिवादी : नित्यानित्य-शब्दार्थ का विवेचन करते हुए भामतीकार ने माना है कि जगत् के मिथ्यात्व से वैराग्य और जिज्ञासादि क्रम से मोक्ष होता है। तथाच जैसे हमारे मत में भी परम्परया जीवमोक्षज्ञान मोक्ष का हेतु है, वैसे ही आपके मत में पारम्पर्येण हेतुत्व तुल्य ही है।

सिवा इसके, 'निषेध साधिष्ठान ही होता है' यह किस प्रमाण से जाना गया? यदि कहें कि लोक से, तो कहना होगा कि लोक का कोई प्रामाण्य नहीं। प्रत्यक्ष का तो आपके मत में प्रामाण्य ही नहीं है। यदि मानें और कहें कि प्रत्यक्ष से अधिष्ठानगत भ्रम बाधित होता है, तो जैसे आपणस्थ सत्य रजत का ही शुक्त्यादि में आरोप देखा जाता है, असत्य का नहीं, वैसे ही सत्य ही जगत् का ब्रह्म में आरोप होगा, असत्य का नहीं। अतः न चाहते हुए भी जगत् को सत्य मानना पड़ेगा।

वादी : 'नित्यानित्य-विवेक' शब्द से जगन्मिथ्यात्व और ब्रह्मसत्यत्व का सम्यक्-ज्ञान विवक्षित नहीं। वैसा मानने पर श्रवणादि व्यर्थ हो जायंगे। 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा। भूतप्रकृतिमोक्षञ्च' यहां तो साक्षात् मोक्ष-साधनता कही गयी है, नित्यानित्य-विवेक की तरह नहीं। कारण 'ये विदुर्यान्ति ते परम्' ऐसा कहा गया है। भूत-प्रकृति का बाधज्ञान ब्रह्मज्ञान के अन्तर्गत ही है, कारण अद्वितीय रूप से ही ब्रह्मज्ञान मोक्ष का हेतु कहा गया है। भूतप्रकृति के बाध के बिना अद्वितीय ब्रह्मज्ञान संभव नहीं। हमारे यहां कथञ्चित् पारम्पर्य होने पर भी पारम्पर्य-बाहुल्य नहीं है। बहु व्यवधान की अपेक्षा अल्प व्यवधान सह्य हो सकता है। अद्वैती तो प्रत्यक्षादि छह प्रमाण मानते हैं। किन्तु आप लोग तो तीन ही। व्यावहारिक, अबाधित और अज्ञात सत्यार्थ के बोधक होने से ही प्रत्यक्षादि का प्रामाण्य

है। किन्तु उपनिषदों का प्रामाण्य अध्यारोप एवं अपवाद-साधकत्वेनैव मान्य है, अज्ञातज्ञापकत्वेन नहीं। कारण तदर्थ-तो स्वप्रकाश ही है। 'व्यवहारे भाट्टनयः' इस उक्ति के अनुसार व्यवहार में प्रत्यक्षादि का प्रामाण्य मानने में कोई बाधा नहीं। ब्रह्मसाक्षात्कार के पश्चात् ब्रह्मातिरिक्त सब कुछ बाधित हो जाने से प्रामाण्य का भी बाध होता है, तो वह कोई दोषावह नहीं। पार पहुँच जाने के बाद नौका के त्याग की तरह वह भी दोष नहीं होगा। एवञ्च प्रत्यक्ष से स्वाधिष्ठान-निषेध सिद्ध हो ही जाता है। ऐसी स्थिति में रजत की तरह जगत् की सत्यता की आशंका नहीं की जा सकती। लाघवात् आरोप्य संस्कार को हेतु मानना चाहिए। गौरवात् आरोप्यप्रमाहित संस्कार को हेतु नहीं माना जा सकता। यही कारण है कि मायाविनिर्मित मिथ्या सर्प के दर्शन से आहित संस्कार द्वारा भी बालक को रज्जु में सर्पभ्रम होता है। अतः जगत् की सत्यता की कोई आपत्ति नहीं रहती।

प्रतिवादी : ब्रह्ममात्र का ज्ञान अद्वैतियों के मत में मोक्ष का कारण है। अब जगन्मिथ्यात्व ज्ञान का भी उसमें प्रवेश करने पर ब्रह्मज्ञान की निर्विकल्पता नष्ट हो जायगी। अतः पारम्पर्य से ही मिथ्यात्वज्ञान को मोक्ष का कारण मानना पड़ेगा।

वादी : 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस श्रुति से सत्य, ज्ञानादि शब्दों से मिथ्यात्व, जाड्यात्यन्ताभावाधिकरणत्व का बोध न होने पर भी जैसे ब्रह्मज्ञान का बोधन होता है, वैसे ही भूतप्रकृतिबाध के बोधन से भूत-प्रकृतिबाध के अधिष्ठान

ब्रह्म का बोध न होने पर भी ब्रह्ममात्र के बोध में किसी प्रकार की बाधा संभव नहीं।

प्रतिवादी : लोक में प्रत्यक्ष द्वारा सविकल्पाधिष्ठान के बोधन से ही भ्रम निवृत्त होता देखा जाता है। तब आपका यह कहना कि निर्विकल्प ब्रह्मज्ञान से प्रपञ्च-भ्रम निवृत्त होता है, प्रत्यक्षविरुद्ध होगी।

वादी : अधिष्ठान के याथात्म्यज्ञान से भ्रम निवृत्त होता है। शुक्ति आदि में नीलपृष्ठ, त्रिकोणत्व आदि रूप से सविकल्प ही याथात्म्य है। किन्तु ब्रह्म में 'नेह नानास्ति किञ्चन', 'एकमेवाद्वितीयम्' इत्यादिरीत्या निर्विकल्पता ही याथात्म्य है। अतः निर्विकल्प ब्रह्म के याथात्म्यज्ञान से ही प्रपञ्चभ्रम की निवृत्ति होगी।

प्रतिवादी : 'ब्रह्म मिथ्यात्वाभावरूप है' यह आपके सिद्धान्त के विरुद्ध है, क्योंकि आप लोग ब्रह्म को अभाव-रूप नहीं मानते। फिर, मिथ्यात्वज्ञान को परम्परया मोक्ष का हेतु मानने पर पारम्पर्य मान ही लिया गया। ब्राह्मण्य से भ्रंश भ्रंश ही है, भले ही वह अल्प हो या अधिक।

वादी : मिथ्यात्वाभाव ब्रह्म से अनतिरिक्त होने पर भी ब्रह्म को हम मिथ्यात्वाभावरूप नहीं मानते। धूम्रपान की अपेक्षा मद्यपान या एक ब्रह्महत्या की अपेक्षा कोटिब्रह्महत्या की तरह बहु व्यवधान की अपेक्षा अल्प व्यवधान में भी महान् अन्तर होने से समता कभी नहीं हो सकती।

प्रतिवादी : ब्रह्म मिथ्यात्वाभावरूप नहीं, किन्तु ब्रह्मानतिरिक्त मिथ्यात्वाभाव है, ऐसा क्यों कहते हैं?

वादी : ब्रह्मानतिरिक्तो मिथ्यात्वाभावः' ऐसा कहा गया है। 'मिथ्यात्वानतिरिक्तं ब्रह्म' यह नहीं कहते।

प्रतिवादी : यह बुद्धि में नहीं बैठता कि अभाव ब्रह्मरूप है, पर ब्रह्म अभावरूप नहीं।

वादी : कैसे नहीं बैठता, जब कि प्रत्यक्ष ही देखा जाता है कि घट मृदनतिरिक्त है और ब्रह्म मिथ्यात्वानतिरिक्त नहीं है। यह स्पष्ट है, इसमें आश्चर्य ही क्या ?

प्रतिवादी : निष्प्रकारक ब्रह्मज्ञान को मोक्ष का हेतु मानने पर 'निष्प्रकारत्व' ही वहां प्रकार होगा। तब कैसे कहते हैं कि ब्रह्मज्ञान निष्प्रकारक है ? इसी तरह 'प्रपञ्चाभाववत् ब्रह्म' इस ज्ञान में प्रतियोगिता सम्बन्ध से प्रपञ्च का भान भी अवश्यम्भावी होने से निष्प्रकारक ज्ञान हो ही नहीं सकता।

वादी : 'अपास्तसमस्तविशेषं ब्रह्म' इस ज्ञान में प्रपञ्चाभावोपलक्षित ब्रह्म का ही भान होने से प्रपञ्च और तदभावाभान उपपन्न होने से कोई दोष नहीं। निर्विशेषताबोधक वाक्यों से समस्त विशेषणों की तरह निष्प्रकारकत्व का भी बाध हो जाने से कोई दोष न होगा। इसी प्रकार निष्प्रकारकत्वोपलक्षित ब्रह्मबोध में निष्प्रकारकत्व का भान भी अनावश्यक है। अतएव कहा गया है :

'निवृत्तिरात्मा मोहस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षितः।'

[इसके बाद रात के ६ बज गये थे, अतः मध्यस्थों ने सभा-समाप्ति की घोषणा की। दूसरे दिन सोमवार को सायंकाल ५ बजे से पुनः सभा की घोषणा हुई।]

द्वितीय दिवस की विचार-सभा

[संवत् २०२२ आषाढ़ शुक्ला सप्तमी सोमवार, ५जुलाई सन् १९६५ को सायंकाल ६ बजे से पुनः विचार-सभा आरम्भ हुई।

प्रतिवादी श्रीविद्यामान्यतीर्थ स्वामीजी महाराज ने विषय के उपक्षेपार्थ अनुरोध करते हुए कहा कि 'कल क्या विषय चर्चित हुआ, स्मरण नहीं आता। अतः पुनः विषयोपन्यास किया जाय।'

इस पर वादी पूज्य गुरुवर्य श्री करपात्री जी स्वामिमहाराज ने कहा :]

कल का विषय यह रहा कि प्रपञ्चाभावोपलक्षित ब्रह्म ही 'प्रपञ्चाभाववद् ब्रह्म' इसका तात्पर्य है। उपलक्षण कादाचित्क होने से ब्रह्म निर्विशेष ही है। ज्ञात आत्मा ही मोक्ष है। ज्ञान और तन्निरूपित ज्ञातता अनित्य होने से मोक्ष भी अनित्य होने लगेगा। इसीलिए ज्ञातता को उपलक्षण मानना चाहिए। तथा च प्रपञ्चाभावोपलक्षित ब्रह्म ही मोक्ष है। अशेष-विशेषातीत होने से उसमें (ब्रह्म में) निष्प्रकारत्व का भी बाध है। भूतप्रकृतिबाध के ज्ञान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के अन्तर-ज्ञान से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, कारण इस विषय में 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' यह श्रुति ही प्रमाण है। ये दोनों ज्ञान ब्रह्मज्ञान से विलक्षण नहीं।

प्रतिवादी : ब्रह्म में द्वितीयाभाव या भूतप्रकृतिबाध विशेषण ही मानना पड़ेगा। उपलक्षण मानने पर कादाचित्क

होने से कदाचित् प्रपञ्चाभावाभाव के रहने पर भी प्रपञ्च के अस्तित्व की आपत्ति आने लगेगी। धर्मों में प्रसक्त विरुद्ध धर्मों के बीच एक के न रहने पर अपर अवश्य रहता है। प्रपञ्चबाध का बाध होने पर प्रपञ्च के सत्त्व की उत्पत्ति माननी पड़ेगी और उसका अबाध मानें तो उससे ब्रह्म में प्रतियोगिता सम्बन्ध से प्रपञ्च और उसके अभाव का भान मानने पर सविकल्पता की आपत्ति होगी। तत्त्वज्ञान से प्रपञ्च का बाध होने पर तत्त्वज्ञान का भी बाध हो जायगा। फिर प्रपञ्चबाध का बाध किससे हो सकता है?

वादी: अभाव या बाध अधिकरणस्वरूप होने के कारण उक्त बाध ब्रह्म से अनतिरिक्त है। अतः उसके बाध की प्रसक्ति ही कहाँ? यदि तदतिरिक्त मानें तो ब्रह्मातिरिक्त मिथ्या होने से ब्रह्मज्ञान ही उसका बाध कर देगा। ब्रह्मा-तिरिक्तत्वेन प्रपञ्चाभाव को उपलक्षण मानने पर उसके कादाचित्क होने पर भी प्रपञ्चसत्त्व की आपत्ति नहीं होगी। कारण तत्त्वज्ञान से मूलाविद्या का नाश हो जाने से उसके अस्तित्व का प्रयोजक कोई हेतु ही नहीं रह जाता। जैसे अविद्यानिवृत्ति विकल्पचतुष्टयासह होने से ज्ञातत्वोपलक्षित आत्मा की निवृत्तिरूप ही माननी पड़ती है, प्रकृत में भी वैसा ही माना जा सकता है। बात यह है कि अविद्यानिवृत्ति को १. सत् मानेंगे, २. असत् मानेंगे, ३. सदसत् मानेंगे या ४. सदसद्विलक्षण? सत् मानें तो द्वैतापत्ति होगी। असत् मानें तो उसकी साध्यता संभव न होगी। विरोध होने से

उसे सदसत् भी नहीं कह सकते। और सदसद्विलक्षण मानें तो मिथ्यात्वापत्ति आयेगी। अतः ज्ञातत्वोपलक्षित आत्मा की निवृत्ति ही अविद्यानिवृत्ति मानी जाती है। यदि कहें कि उपलक्षण कादाचित्क होने से ज्ञाननाश के अनन्तर भी पुनः ज्ञान संभावित होने लगेगा? तो वह ठीक नहीं, कारण ज्ञानप्रयोजक हेतु के अभाव से ही ज्ञानोत्पत्ति की आपत्ति न होगी। प्रकृत में भी यही कहना होगा। प्रपञ्चाभाव मिथ्या होने से उसका बाध होने पर प्रपञ्च की सत्ता की आपत्ति, हेतु के न होने से ही, उठायी नहीं जा सकती। एक धर्मी में प्रसक्त विरुद्ध धर्मों के बीच एक का निषेध होने पर अपर के अस्तित्व की आपत्ति वहीं आती है, जहाँ निषेध्यतावच्छेदक उभयवृत्ति न हो। प्रकृत में दृश्यत्वादि निषेध्यतावच्छेदक उभयवृत्ति ही है, जैसा कि अद्वैतसिद्धि में कहा है:

"ननु उक्तमिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वे प्रपञ्चसत्यत्वापातः, एकस्मिन् धर्मिणि प्रसक्तयोर्विरुद्धधर्मयोरेकमिथ्यात्वे अपरसत्यत्वनियमात्। मिथ्यात्वसत्यत्वे च तद्वदेव, प्रपञ्चसत्यत्वापत्तेः। उभयथाऽप्यद्वैतव्याघात इति चेन्न। मिथ्यात्वमिथ्यात्वेऽपि प्रपञ्चसत्यत्वानुपपत्तेः। तत्र हि विरुद्धयोर्धर्मयोरेकमिथ्यात्वे अपरसत्यत्वं यत्र मिथ्यात्वावच्छेदकम् उभयवृत्तिर्न भवेत्, यथा—परस्पर-विरहव्यापकयो रजतभिन्न-रजतत्वयोः तत्रैव, तत्र निषेध्यतावच्छेदकभेदनियमात्। प्रकृते तु निषेध्यता-वच्छेदकम् एकमेव दृश्यत्वादि। यथा गोत्वाश्वत्वयो-

रेकस्मिन् गजे निषेधे गजत्वात्यन्ताभावव्याप्यत्वं निषेध्यतावच्छेदकम् उभयोस्तुल्यमिति नैकतरनिषेधे अन्यतरत् सत्वं तद्वत्' इति ”

वस्तुतः आप ही यह कह चुके हैं कि समय-बन्ध (शर्तनामे) में अपने आचार्य के विरुद्ध बोलनेवाला पराजित होगा। इतना ही नहीं इस नियम पर वादी, प्रतिवादी और मध्यस्थ के हस्ताक्षर भी हुए हैं। आश्चर्य है कि फिर भी आप अपने आचार्य के विरुद्ध बोल रहे हैं। श्रीमत् मध्वाचार्य ने भगवद्गीता के भाष्य में 'भूतेभ्यः प्रकृतेश्च मोक्षममानित्वादिकम्' कहा है। किन्तु आप तो उसके विरुद्ध 'भूतानां प्रकृतेर्मोक्षः' ऐसा कहते हैं। आपके आचार्य भाष्य-टीकाकार भी 'अत्र द्वन्द्वसमासः भूतेभ्यः पृथिव्यादिभ्यः' कहते हैं। किन्तु आप 'भूतानां चेतनानां जीवानामपराधिनां कारागारादिव प्रकृतेर्मोक्षः' कहते हैं। इसलिए अपने आचार्य के विरुद्ध भाषण करने से सर्व-स्वीकृत समय-बन्ध के अनुसार आपकी पराजय हो गयी। अतएव इसके बाद शास्त्रार्थ समाप्त करना ही उचित होगा।

प्रतिवादी : निश्चय ही आचार्य-विरुद्ध भाषण करने पर हमारी पराजय होगी। किन्तु हमारा यह कथन विरुद्ध भाषण नहीं है। आचार्यों के अभिमत को मानते हुए भी अर्थान्तर करना कोई दोषावह नहीं होता। एक ही विषय की विभिन्न व्याख्याएँ करने में व्याख्याता लोग स्वतन्त्र

हुआ ही करते हैं, जैसे कि भामतीकार आदि की व्याख्याओं में स्पष्ट देखा गया है।

वादी : आपके आचार्यों ने 'भूत' शब्द से 'जड़' पृथिवी आदि का ग्रहण किया गया है। किन्तु आप तो 'भूत' शब्द से 'चेतन' का ग्रहण करते हैं। आपके आचार्य 'मोक्ष' शब्द से 'मोक्षसाधन अमानित्वादि' का ग्रहण करते हैं, जब कि आप 'मोक्ष' शब्द से वस्तुतः 'मोक्ष' ही लेते हैं। यदि जड़ता और चेतनता के बीच विरोध न मानें तो विरोध का अवसर ही कहाँ रहेगा? अतः सिद्ध है कि आपकी उक्ति अपने आचार्य के अभिमत से सर्वथा विरुद्ध है।

[इसके बाद मध्यस्थों ने बीच सभा में घोषणा की कि प्रतिवादी पराजित हो गये। प्रतिवादी बीच में ही उठकर सभा से चले गये।]

●

यह जो कहा गया है कि 'जीवरूप चेतन प्रकृति के वारणार्थ अचेतन पद दिया गया है;' वह भी अकिञ्चित्कर है। कारण अर्थ की संगति ही नहीं बैठती। चेतन जीवों का स्वरूपभूत प्रकृति द्वारा बन्धन संभव नहीं, स्वयं का स्वयं बन्धक नहीं होता। ऐसा मानें तो मुक्ति होने पर भी वह होने लगेगा। चेतनान्तर का चेतनान्तर से बन्ध भी संभव नहीं, वैसा माना नहीं जाता और न वह संभव ही है। जडपुरस्कारेण बन्धकत्व मानें तो जड़ में ही उसका पर्यवसान हो जायगा। अतः उसकी कल्पना भी व्यर्थ है। किञ्च—यदि चेतनों का भी बन्धकत्व मान लें तो अचेतन पद से अचेतन प्रकृति का मोक्ष ही उक्त रीति से चेतनबन्ध की अनिवृत्ति होकर अत्यन्त मोक्ष असंभव हो जायगा।

यह जो कहा गया कि 'भाष्य में द्वन्द्व और तात्पर्य में कर्मधारय माना गया है', वह भी कुछ नहीं है। 'अचेतनैः पञ्चभूतादिभिः सहिता प्रकृतिः अचेतनप्रकृतिः' इस प्रकार मध्यमपदलोपी समास से कर्मधारय भी द्वन्द्वार्थ का समर्थन हो जाता है। किञ्च—स्वयं को आचार्यों के अविरुद्धभाषी सिद्ध करने के लिए आचार्यों को परस्परविरुद्धभाषी सिद्ध करने का आपका प्रयास सचमुच आश्चर्यजनक है। अन्त में हम यही निवेदन करेंगे कि आप जैसे आचार्यवर्य इस प्रकार के असदाग्रह से सर्वथा विरत हो जायँ।

श्री करपात्रीस्वामिपादों का वशंवद

—मार्कण्डेय

परिशिष्ट : १

श्रीमध्वाचार्य को आमन्त्रण

माघमेले में शास्त्रार्थ के लिए

हरिद्वारमें अनेक शास्त्र पारदृश्वा पाँच, छः महामण्डलेश्वरों, सैकड़ों विद्वानों, महात्माओं तथा सहस्रों शिष्ट नर-नारियों के मध्य स्वलिखित समयबन्ध (शर्तनामे) के अनुसार भण्डारकेरि-मठाधीश्वर श्रीस्वामी विद्यामान्यतीर्थ श्री स्वामी करपात्री जी महाराज से शास्त्रार्थ में पराजित हुए और मध्यस्थ तथा सभी मण्डलेश्वरों, महात्माओं के सामने तूष्णीम्भूत और हतप्रतिभ हो समयबन्ध लेते हुए उठकर चले गये। दैनिक, पाक्षिक समाचारपत्रों के संवाद दाताओं ने ऐसा ही समाचार प्रकाशित किया है। फिर भी श्री स्वामी करपात्री जी महाराज की ओर से उसका कोई प्रचार नहीं किया गया। किन्तु अब अपनी हार की झेंप मिटाने के लिए श्री स्वामी विद्यामान्यतीर्थ जी ने मिथ्या-प्रचार मयनोटिसबाजी प्रारम्भ कर दी है। उनका कहना है कि 'हमारे सामने से ध्वनिक्षेपक यन्त्र हटा लिया गया और हमें बोलने का अवसर ही नहीं दिया गया।' परन्तु यह सफेद झूठ है। यदि ऐसा होता तो तटस्थ 'नवभारत टाइम्स' आदि पत्र वैसा समाचार क्यों न छापते ? सहस्रों व्यक्तियों, महात्माओं के समक्ष हुई पराजय को इस प्रकार सुदृढ़ अपलाप (सफेद झूठ) से छिपाया नहीं जा सकता।